



हिन्दी साहित्य और आदिवासी जीवन-दृष्टि: डॉ. रामदयाल मुंडा का समीक्षात्मक अध्ययन

1 कृष्णा सरदार, 2 डॉ. जैस्मिन पटनायक

1 शोधार्थी (हिन्दी) कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस किस् मानित विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडिशा

2 सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी) कलिंग इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस किस् मानित विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडिशा

सारांश

भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना में आदिवासी समुदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज का जीवन-दर्शन प्रकृति के साथ गहरे संबंध, सामूहिकता की भावना और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण पर आधारित है। उनकी जीवन-शैली हमें यह सिखाती है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना कितना जरूरी है। आधुनिक विकास और वैश्वीकरण के समय में आदिवासी समाज की पहचान, संस्कृति और जीवन मूल्यों पर कई प्रकार के संकट पैदा हुए हैं। ऐसे समय में साहित्य के माध्यम से आदिवासी जीवन-दर्शन को समझना और उसे व्यापक समाज तक पहुंचाना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन और उनकी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाले प्रमुख चिंतकों में डॉ. रामदयाल मुंडा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने लेखन और वैचारिक कार्यों के माध्यम से आदिवासी समाज की सांस्कृतिक पहचान, लोक परंपरा और जीवन मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया। प्रस्तुत शोध आलेख में हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आदिवासी जीवन-दर्शन का अध्ययन किया गया है, विशेष रूप से डॉ. रामदयाल मुंडा के विचारों और योगदान का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आदिवासी समाज का जीवन-दर्शन आज के आधुनिक और पर्यावरणीय संकट से जूझते समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

बीज शब्द : आदिवासी जीवन - दर्शन, संस्कृति, प्रकृति और सहअस्तित्व, हिन्दी साहित्य, डॉ. रामदयाल मुंडा ।

प्रस्तावना

आदिवासी समाज का जीवन-दर्शन प्रकृति के साथ सहअस्तित्व, सामूहिकता और जीवन के संतुलन पर आधारित है। आज जब हम आदिवासी जीवन की बात करते हैं, तो यह केवल किसी समुदाय का वर्णन नहीं होता, बल्कि एक ऐसे जीवन के तरीके को दर्शाता है जो प्रकृति, मनुष्य और समाज के बीच संतुलन को महत्व देता है। आधुनिक विकास की दौड़ में जहाँ मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है, वहीं आदिवासी समाज आज भी जल, जंगल, नदी, पहाड़ और धरती के साथ एक

गहरा संबंध बनाए हुए है। गंगा सहाय मीणा अपने ग्रंथ 'आदिवासी चिंतन की भूमिका' में लिखते हैं - "आदिवासी दर्शन परलोक के बजाय समूचे जीव - जगत को महत्वपूर्ण मानता है और मनुष्य की श्रेष्ठता के दंभी दावे को खारिज करता है। आदिवासी विश्व दृष्टि के अनुसार दुनिया का हर प्राणी और उसका जीवन बराबर महत्वपूर्ण है। इसलिए उन सबको बचाया जाना जरूरी है, साथ ही नदी, नाले, पहाड़, जंगल आदि को भी बचाया जाना जरूरी है।"¹

आदिवासियों का दिनचर्या हमें सिखाता है कि प्रकृति केवल उपयोग की चीज नहीं, बल्कि हमारे अस्तित्व का एक अहम हिस्सा है। हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन-दर्शन का प्रवेश थोड़ी देर से हुआ, लेकिन जब यह चर्चा शुरू हुई, तो उसने साहित्य को एक नया आयाम दिया।

डॉ. रामदयाल मुंडा का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे केवल एक विद्वान ही नहीं थे, बल्कि आदिवासी जीवन के सच्चे प्रतिनिधि थे। उन्होंने अपने लेखन, विचारों और सांस्कृतिक कार्यों के माध्यम से यह साबित किया कि आदिवासी समाज कोई पिछड़ा समाज नहीं, बल्कि एक समृद्ध और संतुलित जीवन-दर्शन का प्रतीक है। उनके लिए आदिवासी जीवन सिर्फ अध्ययन का विषय नहीं था, बल्कि वे स्वयं उस जीवन को जीते थे और उसकी गरिमा को समझते थे। डॉ. मुंडा के विचार हमें विकास के वास्तविक अर्थ पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। क्या केवल भौतिक प्रगति ही विकास का मापदंड है, या प्रकृति, संस्कृति और मानवीय संबंधों के साथ संतुलन स्थापित करना ही सच्चा विकास है? इस प्रश्न के माध्यम से उनका चिंतन हमें एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन-दर्शन का अध्ययन केवल साहित्यिक विश्लेषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक चर्चा है। डॉ. रामदयाल मुंडा के संदर्भ में इस विषय का अध्ययन हमें आदिवासी समाज को समझने में मदद करता है और हमारे समय और समाज को नए नजरिये से देखने की प्रेरणा भी देता है।

आदिवासी जीवन - दर्शन को समझने का सबसे आसान तरीका है उसे मानवीय अनुभवों के स्तर पर देखना है। यह केवल किसी समुदाय की परंपरा नहीं, बल्कि जीने का एक संवेदनशील, संतुलित और सामूहिक तरीका है। आदिवासी समाज में लोग खुद को प्रकृति से अलग नहीं मानते, बल्कि उसके एक अभिन्न भाग के रूप में समझते हैं। हरिराम मीणा अपने ग्रंथ 'जल जंगल जमीन (भारत का आदिवासी समाज)' में लिखते हैं - "भारत के आदिवासी जन भौगोलिक दृष्टि से मुख्य समाज से अलग - थलग रहते आये हैं। वे पूंजी संचालित बाजार का हिस्सा धीरे - धीरे बनेंगे, लेकिन जहाँ तक प्राकृतिक संसाधनों की बात की जाती है तो आदिवासी अस्तित्व का सवाल गहरे रूप में जल, जंगल और जमीन से जुड़ा हुआ मिलता है जिसे दूसरे शब्दों में हम प्रकृति पर निर्भर जीवन कह सकते हैं।"²

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि आदिवासियों का जंगल उनके लिए केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदाता है, नदी केवल पानी का स्रोत नहीं, बल्कि यादों और भावनाओं का वाहक है। इस दृष्टिकोण में मनुष्य, जानवर, पेड़-पौधे और धरती सभी एक साझा परिवार का हिस्सा हैं। यही कारण है कि आदिवासी जीवन-दर्शन में शोषण के बजाय सहअस्तित्व और संरक्षण की भावना प्रमुख होती है। आदिवासी जीवन में 'मैं' से ज्यादा 'हम' का महत्व होता है। किसी एक व्यक्ति की खुशी या दुख पूरे समुदाय से जुड़ा होता है। जन्म, विवाह, मृत्यु या त्योहार - हर अवसर सामूहिक होता है, जिसमें सभी मिलकर भाग लेते हैं। यह जीवनशैली आधुनिक समाज की अकेलेपन की प्रवृत्ति के विपरीत है, जहाँ व्यक्ति अक्सर अकेला महसूस करता है। आदिवासी समाज हमें सिखाता है कि सच्चा सुख साझा करने में है, न कि केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों में। यह

दृष्टिकोण आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए एक महत्वपूर्ण सीख है, जहाँ बढ़ती इच्छाएँ और संसाधनों का अंधाधुंध उपयोग पर्यावरण संकट पैदा कर रहा है। आदिवासी जीवन हमें यह सिखाता है कि संतोष, संयम और प्रकृति का सम्मान ही सच्चे सुख का आधार हैं। डॉ. रामदयाल मुंडा के संदर्भ में यह जीवन-दर्शन और स्पष्ट और जीवंत हो जाता है। उन्होंने आदिवासी संस्कृति को केवल अध्ययन का विषय नहीं माना, बल्कि उसे जीया और व्यक्त किया। उनके अनुसार, आदिवासी जीवन एक 'मानवीय सभ्यता' का प्रतीक है, जहाँ संबंध, संवेदना और प्रकृति के साथ संतुलन सबसे महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार, आदिवासी जीवन-दर्शन हमें एक अधिक मानवीय, संवेदनशील और टिकाऊ जीवन जीने की दिशा दिखाता है।

आदिवासी संस्कृति का मतलब है इसे सिर्फ परंपराओं या रीति-रिवाजों के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के अनुभव के रूप में समझना। आदिवासी संस्कृति में जीवन का हर पहलू - खुशी, दुख, प्रेम, काम, उत्सव - गहरी मानवीय भावना से जुड़ा होता है। यहाँ संस्कृति किताबों में नहीं, बल्कि लोगों के रोजमर्रा के जीवन में जीवित रहती है। खेतों में काम करते समय गाए जाने वाले गीत, रात के नृत्य, और त्योहारों में सामूहिक भागीदारी ये सब मिलकर एक ऐसा जीवन बनाते हैं जहाँ मनुष्य अकेला नहीं, बल्कि अपने समुदाय और प्रकृति के साथ गहराई से जुड़ा होता है। आदिवासी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पहलू है - प्रकृति के साथ उसका गहरा संबंध। वे पेड़-पौधों, नदियों और पहाड़ों को सिर्फ चीजें नहीं मानते, बल्कि उन्हें जीवित और संवेदनशील मानते हैं। डॉ. गिरिधारी राम गैंगू 'गिरिराज' अपने ग्रंथ झारखंड की सांस्कृतिक विरासत में लिखते हैं - "संस्कृति जीवन का संस्कार है। हमारी मनोवृत्तियों का परिष्कार है। जिसे हम स्वयं बनाते हैं और इसी से नियंत्रित होते हैं। यही संस्कृति हमारे व्यवहार और विचार में, हमारे विश्वास, मान्यता, धारणा एवं अभिव्यक्ति में दिखाई देती है। जीवन के सारे आदर्श, शील - स्वभाव, जीवन - मूल्य, जीवन - दर्शन, जीवन - कला, नैतिकता एवं सौन्दर्य - बोध सभी कुछ संस्कृति में समाए हुए हैं।"³

इस कथन से ज्ञात होता है कि आदिवासियों की संस्कृति में प्रकृति के प्रति सम्मान, कृतज्ञता और संरक्षण की भावना स्वाभाविक होती है। यह दृष्टिकोण आज के पर्यावरण संकट के समय में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमें सिखाता है कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध उपभोग का नहीं, बल्कि सहअस्तित्व का होना चाहिए। डॉ. मुंडा के अनुसार, आदिवासी संस्कृति पिछड़ेपन का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह एक समृद्ध और संतुलित जीवन-पद्धति है। यह मनुष्य को प्रकृति, समाज और अपने आप के साथ सामंजस्य स्थापित करना सिखाती है। इस तरह, आदिवासी संस्कृति हमें एक अधिक मानवीय, सहृदय और संतुलित समाज की ओर सोचने के लिए प्रेरित करती है।

आदिवासी समुदाय में प्रकृति और सह-अस्तित्व केवल एक दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि मानव जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। आदिवासी दृष्टिकोण में, प्रकृति कोई बाहरी तत्व नहीं, बल्कि एक जीवित साथी के रूप में देखी जाती है। पेड़ वृद्धों के समान छाया प्रदान करते हैं, नदियाँ माता के रूप में पोषण करती हैं, और धरती एक साझा निवास के रूप में देखी जाती है, जिसे सभी मिलकर संभालते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, मानव प्रकृति पर अधिकार नहीं जमाता, बल्कि उसके साथ एक संबंध स्थापित करता है। सम्मान, कृतज्ञता और संवेदनशीलता के साथ। सहअस्तित्व इस रिश्ते को और मजबूत बनाता है, जहाँ मनुष्य, पशु, पेड़-पौधे और पूरा पर्यावरण एक साथ, संतुलन में रहते हैं। यहाँ 'जीना' या 'विकास' का मतलब दूसरों को पीछे छोड़ना नहीं, बल्कि सबके साथ मिलकर आगे बढ़ना है। यह दृष्टिकोण हमें सिखाता है कि सच्ची समृद्धि तभी संभव है जब हम प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर, उसकी सीमाओं का सम्मान करते हुए जीवन जीएँ।

सामूहिक जीवन केवल सह-अस्तित्व की एक व्यवस्था नहीं है, बल्कि एक-दूसरे के लिए जीने की एक गहन भावना है। इसमें व्यक्ति अपनी पहचान को नहीं खोता, बल्कि दूसरों के साथ जुड़कर और अधिक समृद्ध होता है। वंदना टेटे द्वारा संपादन ग्रंथ 'आदिवासी दर्शन और साहित्य' में डॉ. सावित्री बड़ाईक अपने आलेख 'आदिवासी और समकालीन आदिवासी कविताएं' में लिखते हैं - "प्रेम, करुणा, दया मानव के गुण हैं। आदिवासियों में प्रेम का विस्तार सजीव से लेकर निर्जीव तक होता है। वह इस बात का घमंड नहीं करता कि वह सारे प्राणियों में श्रेष्ठ है। यही कारण है कि आदिवासी दर्शन में मनुष्य को जितनी महता प्राप्त है, उतना ही महत्व, पशु - पक्षियों, नदी पर्वतों को भी प्राप्त है।"⁴

आदिवासी समाज में सामूहिक जीवन का अर्थ है - किसी एक की खुशी सभी की खुशी और किसी एक का दुख पूरे समुदाय का दुख। खेतों में सामूहिक श्रम, उत्सवों में मिलकर नृत्य-गान, और कठिन समय में एक-दूसरे का सहारा बनना ये सभी तत्व इस जीवन पद्धति को मानवीय संवेदनाओं से भर देते हैं। सामूहिक जीवन हमें सिखाता है कि मनुष्य अकेले पूरा नहीं होता। रिश्तों, सहयोग और विश्वास के बिना जीवन अधूरा है। यहाँ 'मैं' से ज्यादा 'हम' का महत्व होता है, और यही 'हम' जीवन को सुरक्षित और अर्थपूर्ण बनाता है। आधुनिक समाज की अकेलेपन और प्रतिस्पर्धा के विपरीत, सामूहिक जीवन हमें साझा जिम्मेदारी, सहानुभूति और एकजुटता का पाठ पढ़ाता है जहाँ हर व्यक्ति दूसरों के जीवन में महत्व रखता है।

हिन्दी साहित्य को मानवीय दृष्टिकोण से देखने का अर्थ है इसे केवल ग्रंथों, लेखकों और शैलियों के संग्रह के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन्त अनुभवों, संवेदनाओं और संघर्षों की अभिव्यक्ति के रूप में समझना। यह साहित्य मानव मन में चलने वाली भावनाओं जैसे - प्रेम, पीड़ा, आशा, निराशा, विद्रोह और करुणा को शब्दों में ढालता है। जब हम हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो हम विभिन्न समय, समाज और व्यक्तियों के जीवन में प्रवेश करते हैं। यह हमें यह अनुभव कराता है कि चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी भिन्न क्यों न हों, मानव की मूल संवेदनाएँ एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। डॉ. श्यामसुंदर दास अपने ग्रंथ में 'साहित्यालोचन' में लिखते हैं - "हिन्दी साहित्य का इतिहास ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह विदित होता है कि हम उसे भिन्न - भिन्न कालों में ठीक - ठीक विभक्त नहीं कर सकते। उस साहित्य का इतिहास एक बड़ी नदी के प्रवाह के समान है जिसकी धारा उद्गम स्थान में तो बहुत छोटी होती है, पर आगे बढ़कर और छोटे - छोटे टीलों या पहाड़ियों के बीच में पड़ जाने पर वह अनेक धाराओं में बहने लगती है।"⁵ हिन्दी साहित्य का मानवीय पक्ष उसकी विविधता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसमें ग्रामीण किसान की थकान और आशा, शहरी श्रमिक का संघर्ष, स्त्री की आत्मकथा, और दलित एवं आदिवासी समाज की पीड़ा और प्रतिरोध शामिल हैं। यह साहित्य उन आवाज़ों को उजागर करता है जिन्हें समाज में प्रायः दबा दिया जाता है। इस प्रकार, हिन्दी साहित्य केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और न्याय की मांग का एक महत्वपूर्ण साधन भी बन जाता है। यह हमें दूसरों के दुख को समझने, उनके अनुभवों से जुड़ने और अधिक संवेदनशील बनने की प्रेरणा देता है। हिन्दी साहित्य रिश्तों की गहराई को उजागर करता है। यह परिवार, प्रेम, मित्रता और सामाजिक संबंधों को बड़ी सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। साहित्य के पात्र हमें अपने समकक्ष प्रतीत होते हैं; उनकी खुशियाँ हमें आनंदित करती हैं और उनका दुख हमें गहराई से प्रभावित करता है। यही कारण है कि साहित्य केवल पढ़ने का साधन नहीं रह जाता, बल्कि हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाता है। यह हमें आत्म-निरीक्षण करने और अपने आसपास के समाज को नए दृष्टिकोण से देखने का अवसर प्रदान करता है। जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होते हैं, साहित्य नई समस्याओं, प्रश्नों और संवेदनाओं को आत्मसात करता है। वर्तमान हिन्दी साहित्य में हाशिए के समाजों की आवाज़, पर्यावरण संरक्षण की चिंता, और पहचान के संघर्ष प्रमुखता से उभर रहे हैं। यह इस बात का संकेत है कि साहित्य

स्थिर नहीं, बल्कि जीवंत और गतिशील है जो मानव अनुभव के साथ निरंतर विकसित होता है। अंततः हिन्दी साहित्य हमें अधिक मानवीय बनने में मदद करता है। यह हमें ज्ञान नहीं, बल्कि संवेदना, सहानुभूति और समझ भी देता है। यह सिखाता है कि असली विकास केवल भौतिक नहीं, बल्कि भावनात्मक और नैतिक भी होता है। इस तरह, हिन्दी साहित्य एक दर्पण की तरह है, जिसमें हम समाज के साथ-साथ खुद को भी पहचानते हैं और यही इसकी सबसे बड़ी ताकत है।

डॉ रामदयाल मुंडा सिर्फ एक विद्वान या अधिकारी ही नहीं थे, बल्कि एक संवेदनशील व्यक्ति, प्रकृति प्रेमी, संस्कृति के रक्षक और समुदाय के साथी भी थे। उनका जीवन आदिवासी पहचान, भाषा और परंपरा के साथ गहरे भावनात्मक संबंध का उदाहरण था। डॉ. रामदयाल मुंडा का व्यक्तित्व एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो अपनी जड़ों से गहरे संबंध में थे। वे केवल पुस्तकों के विद्वान नहीं थे, बल्कि अपने समाज के दुख-दर्द, संघर्ष और खुशियों को सजीवता से अनुभव करते थे। उन्होंने आदिवासी संस्कृति को केवल अध्ययन का विषय नहीं बनाया, बल्कि उसे अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा बना लिया। जब वे लोकगीत गाते थे या पारंपरिक वाद्य बजाते थे, तब वे केवल कलाकार नहीं, बल्कि अपनी संस्कृति के जीवंत प्रतिनिधि बन जाते थे। उनका जीवन यह सिखाता है कि ज्ञान तभी सार्थक है, जब वह मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ा हो। डॉ. शांति नाग अपने ग्रंथ 'डॉ. रामदयाल मुंडा: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में लिखते हैं - "आदिवासी और गैर आदिवासी समुदाय जो अपनी गरीबी को प्रकृतिक संसाधनों से ही दूर करती है। वह जल, जंगल और जमीन के बिना ये प्रकृति आधारित समाज बिखर जाएगा तथा अपना जीवन नहीं बचा पाएगा। इन बातों को डॉ. रामदयाल मुंडा अच्छी तरह जानते थे। यही वजह है कि लोगों को जल, जंगल तथा जमीन बचाने के लिए जागरूक करने का काम वे किया करते थे।"⁶

उनकी सोच में प्रकृति और मानव के बीच गहरा सहअस्तित्व स्पष्ट होता है। उन्होंने माना कि आदिवासी जीवन-दर्शन में प्रकृति केवल एक संसाधन नहीं, बल्कि एक जीवित साथी है। इस दृष्टिकोण को उन्होंने अपने कार्यों और विचारों के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत किया। उनके लिए जंगल, नदी और पहाड़ केवल भौगोलिक तत्व नहीं थे, बल्कि जीवन के अभिन्न अंग थे, जिनके बिना मानव अस्तित्व अधूरा है। इस मानवीय दृष्टिकोण के माध्यम से उन्होंने आधुनिक समाज को भी प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनने का संदेश दिया। डॉ. रामदयाल मुंडा के गीत - कविताओं का संग्रह ग्रंथ 'सेलेद' में लिखते हैं -

“जंगल जल रहे है

पहाड़ जल रहे हैं।

बनाए रखो, प्रिय चूहा, शीशम का घर।

बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।।

नदियां सुख रही है

स्रोत सुख रहे है।

बनाए रखो, प्रिय केकड़ा, पत्थर का द्वार।

बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।।

लोग तुम्हें पकड़ लेंगे

लोग तुम्हें दबोच लेंगे।
 बनाए रखो, प्रिय चूहा, शीशम का घर।
 बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।।
 लोग तुम्हें पका खाएंगे
 लोग तुम्हें भून चबाएंगे।
 बनाए रखो, प्रिय केकड़ा, पत्थर का द्वार।
 बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।।
 बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।
 बनाए रखो प्रिय, बनाए रखो।।”⁷

उपर्युक्त कथन में कवि 'जंगल जल रहे हैं' कविता में जलते जंगलों के दुःख को व्यक्त करते हैं। वर्तमान में प्रकृति के कई घटक विनाश के कगार पर हैं, जिससे कवि चिंतित हैं। ठेकेदारों को जंगल की प्रत्येक वस्तु आकर्षक लगने लगी है, और हजारों वर्षों से जीवन जी रहे पेड़ आज उनके शिकार बन चुके हैं। जंगलों का इस प्रकार तेजी से विनाश हो रहा है कि इसके आसपास के सभी जीव-जंतु भी प्रभावित हो रहे हैं। कवि ने 'चूहा' और 'केकड़ा' जैसे दो जीवों को प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर प्रकृति की रक्षा का संदेश दिया है। चूहा उभयचर प्राणियों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि 'केकड़ा' जलचर प्राणियों का। कवि 'चूहे' को जलते जंगलों से बचाने के लिए शीशम का घर बनाने का सुझाव देते हैं, ताकि वह आग से सुरक्षित रह सके। इसी प्रकार, भूमि पर रहने वाले सभी जीव-जंतु चूहे की तरह शीशम के घर में रहकर अपनी जान बचा सकते हैं, चाहे लोग उन्हें कितनी भी बार पकड़ने का प्रयास करें। कवि जलचर प्राणियों के लिए भी चिंतित हैं और 'केकड़े' को पत्थर का घर बनाने का सुझाव देते हैं, जिससे उसकी जान बच सके। इस प्रकार, जलचर प्राणियों की सुरक्षा के लिए ध्यान रखना आवश्यक है, ताकि वे मानव जाति से अपनी रक्षा कर सकें और साथ ही प्रकृति का भी संरक्षण हो सके। अन्यथा लाखों-करोड़ों प्राकृतिक जीव-जंतु इसी प्रकार शिकार बनते रहेंगे। इस प्रकार, कवि रामदयाल मुंडा ने 'जंगल जल रहे हैं' कविता के माध्यम से जलते जंगलों के दुःख को व्यक्त किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि आज जंगलों के जलने और नदियों के सूखने के कारण हजारों 'चूहे' और 'केकड़े' मर रहे हैं।

डॉ. मुंडा का एक महत्वपूर्ण मानवीय पहलू उनका सामूहिकता में विश्वास था। उन्होंने व्यक्तिगत सफलता के बजाय सामुदायिक विकास को प्राथमिकता दी। उनका निरंतर प्रयास रहा कि आदिवासी समाज अपनी पहचान और अधिकारों के प्रति जागरूक हो। वे सीधे लोगों के बीच जाकर संवाद करते थे, उनकी भाषा में बात करते थे और उनकी समस्याओं को गहराई से समझते थे। यह स्पष्ट करता है कि वे केवल एक नेता नहीं, बल्कि अपने समुदाय के सच्चे मार्गदर्शक और सहयोगी थे। डॉ. रामदयाल मुंडा एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जिन्होंने ज्ञान, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं के बीच संतुलन स्थापित किया। उनका जीवन हमें प्रेरित करता है कि हम अपनी जड़ों से जुड़े रहें, प्रकृति का सम्मान करें, और समाज के साथ मिलकर आगे बढ़ें। वे केवल एक महान विद्वान नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, जीवंत और प्रेरणादायक व्यक्तित्व थे, जिनकी मानवीयता आज भी हमें मार्गदर्शन प्रदान करती है।

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन-दर्शन: डॉ. रामदयाल मुंडा के संदर्भ में जब हम गहराई से अध्ययन करते हैं, तो यह केवल विचारों का सार नहीं रह जाता, बल्कि मानव मन में एक आत्मिक संवाद के रूप में जीवंत हो उठता है। यह निष्कर्ष हमें एक ऐसे जीवन की अनुभूति कराता है, जहां ज्ञान केवल पुस्तकों में सीमित नहीं होता, बल्कि हर पेड़, हर नदी, हर पर्वत और हर सामूहिक गीत में धड़कता है। डॉ. मुंडा का संपूर्ण जीवन इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी जीवन-दर्शन कोई सैद्धांतिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक जीया हुआ अनुभव है एक ऐसा अनुभव जो मानव को प्रकृति, समाज और स्वयं के साथ संतुलन स्थापित करना सिखाता है। जब हम इस निष्कर्ष को मानवीय दृष्टिकोण से समझते हैं, तो हमें एक साधारण आदिवासी व्यक्ति का जीवन दिखाई देता है। वह सुबह उठकर जंगल की ओर जाता है, पेड़ों से संवाद करता है, मिट्टी को छूकर अपने अस्तित्व का अनुभव करता है और दिन के अंत में अपने समुदाय के साथ गीत-नृत्य करके जीवन की थकान को खुशी में बदल देता है। यह जीवन हमें यह समझाता है कि सच्चा सुख भौतिक संपन्नता में नहीं, बल्कि संबंधों की गहराई और संतुलन में है। हिन्दी साहित्य में यह दृष्टि पाठकों को केवल कहानी सुनने के लिए नहीं, बल्कि उस जीवन को अनुभव करने के लिए प्रेरित करती है। डॉ. मुंडा स्वयं इस जीवन-दर्शन के जीवंत प्रतीक थे। जब वे आदिवासी संस्कृति की बात करते थे, तो वह केवल एक विद्वान की भाषा ही नहीं होती थी, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति की आवाज होती थी, जिसने उस संस्कृति को जिया है, महसूस किया है और उसके हर रंग को अपनी आत्मा में उतारा है। उनका मानवता से भरा व्यक्तित्व हमें यह सिखाता है कि अपनी जड़ों से जुड़े रहना किसी पिछड़ेपन का संकेत नहीं, बल्कि एक गहरी समझ और आत्मगौरव का प्रतीक है। यह हमें आधुनिक जीवन की जटिलताओं पर सोचने के लिए प्रेरित करता है। आज जब मनुष्य तकनीक और उपभोग की दौड़ में अपने रिश्तों और प्रकृति से दूर होता जा रहा है, तब आदिवासी जीवन-दर्शन एक आईने की तरह हमारे सामने आता है। यह हमें याद दिलाता है कि यदि हम केवल प्रगति के नाम पर प्रकृति का दोहन करते हैं और सामूहिकता को भूल जाते हैं, तो अंततः हम अपने ही अस्तित्व को कमजोर कर देंगे। हिंदी साहित्य इस चेतावनी को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक केवल समझता नहीं, बल्कि भीतर से अनुभव करता है। डॉ. रामदयाल मुंडा एक प्रेरणादायक व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं, जो जीवन के वास्तविक अर्थ को समझने की दिशा में हमें मार्गदर्शन करते हैं। वे हमें सिखाते हैं कि हमें अपने विकास की परिभाषा को पुनः परिभाषित करना होगा एक ऐसी परिभाषा जिसमें प्रकृति के प्रति सम्मान, समाज के प्रति जिम्मेदारी और जीवन के प्रति संवेदनशीलता निहित हो। यही मानवीय दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य को केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि आत्मिक अनुभव का माध्यम बनाता है, और यही आदिवासी जीवन-दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण संदेश भी है।

संदर्भ:

- ¹ मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2025, पृष्ठ सं - 90
- ² मीणा, हरिराम, जल जंगल जमीन (भारत का आदिवासी समाज), राजपाल एण्ड सन्ज, मदरसा रोड, दिल्ली, 2025, पृष्ठ सं - 23
- ³ 'गिरिराज' डॉ. गिरिधारी राम गैङ्गू झाखंड की सांस्कृतिक विरासत, पृथ्वी प्रकाशन, न्यू दिल्ली, 2019, पृष्ठ सं - 19
- ⁴ टेटे, वंदना, आदिवासी दर्शन और साहित्य, नेशनल प्रेस, भारत, 2021, पृष्ठ सं - 85
- ⁵ दास, डॉ. श्यामसुंदर, साहित्यालोचन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ सं - 50
- ⁶ नाग, डॉ. शांति, डॉ. रामदयाल मुंडा: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, रुम्बुल, दिरी - ओड़ा, सरनाटोली - हतमा, राँची कॉलेज के पीछे, राँची, झाखंड, पृष्ठ सं - 199
- ⁷ मुंडा, रामदयाल, सेलेद (विविधा), रुम्बुल, दिरी - ओड़ा, सरनाटोली - हतमा, राँची कॉलेज के पीछे, राँची, झाखंड, 2017, पृष्ठ सं - 206

